पूज्यपाद बाबा श्री शाही स्वामी जी महाराज

छाया–अनील कुमार 'सुमन' पिता श्री सरयुग प्रसाद ग्रा०–वृन्दावन शेखपुरा (बिहार)

पूज्यपाद बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज

आप विक्रमी संवत् १९७९ की ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, शनिवार तदनुसार सन् १९२२ ई० के जून महीने में उत्तर प्रदेश के देवरिया जिलान्तर्गत छोटी गंडक के तट पर शोभायमान नौतन नामक ग्राम में विषेण क्षत्रिय कुलभूषण बाबू श्रीतिलकधारी शाही एवं श्रीमती सुखराजी देवी की ज्येष्ठ सन्तान के रूप में अवतरित हुए। किसने जाना था कि भविष्य में आप विलक्षण प्रतिभावान् और महान् सन्त बनेंगे। आपके तीन छोटे भाई हैं। भाइयों में बड़े होने के कारण सब लोग आपको आदरपूर्वक 'बड़कन बाबू' कहकर सम्बोधित करते थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही विद्यालय में हुई। आपका विद्यालय का नाम अवधकिशोर शाही था। मनमौजी प्रकृति होने के कारण आप मात्र चौथी कक्षा तक ही पढ़ पाये। भूगोल और गणित में आपकी विशेष अभिरुचि थी। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त आपने फारसी भी पढ़ी थी। बचपन से ही आप आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे और नियमित रूप से श्रीहनुमान चालीसा और श्रीदुर्गा चालीसा का पाठ करते थे तथा पीपल के वृक्ष में व सूर्य भगवान् को बड़ी श्रद्धा से जल का अर्घ्य दिया करते थे। आपकी श्रद्धा-भक्ति देखकर आपके एक सम्बन्धी, जो रिश्ते में आपके बाबा लगते थे, आपको 'पण्डितजी' कहकर सम्बोधित करते थे। पढ़ाई छोड़ने के बाद आपका उपनयन संस्कार बड़ी धूमधाम से आपके ननिहाल फूलपुर, जिला बस्ती में सम्पन्न हुआ। धर्म के प्रति आपके अनुराग को देखकर आपके पिताजी आशंकित हो उठे कि कहीं यह पुत्र संन्यासी न बन जाय; उन्होंने ठीक महाराज शुद्धोदन की तरह, जिन्होंने अपने पुत्र सिद्धार्थ (भगवान् बुद्ध) को गृहस्थ-जीवन में बाँध देना चाहा था, उनका विवाह कर देना चाहा। लेकिन आप विवाह के पक्ष में बिलकुल ही नहीं थे। फिर भी पिताजी के हठ के सामने आपकी एक न चली और सन् १९४० ई० में गोरखपुर जिलान्तर्गत माड़ापार की एक कुलीन कन्या के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के ४ वर्ष बाद आपको एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम 'श्याम नारायण शाही' रखा गया। इन दिनों श्रीश्याम नारायण शाही सकरोहर (खगड़िया) में निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त आपको और कोई सन्तान नहीं हुई।

आप अपने पूर्व संस्कारवश आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा से प्रेरित हो रहे थे। परिवार में रहना आपको अच्छा नहीं लगता था। अक्टूबर, १९४१ ई० में अपने फूफा श्रीभगवतीप्रसाद सिंहजी के आग्रह पर आप उनकी जमीन्दारी की देख-रेख

के लिए सकरोहर आ गये। अगस्त, १९४२ ई० में आप पुनः नौतन आये और सन्त कबीर साहब की तरह कपड़ा बुनकर स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने की बात आपने सोची। हाटा सबडिविजन के अन्तर्गत समांगी पट्टी में कुछ दिनों के प्रयास से आप हस्तकरघा चलाने में निपुण हो गये। अपने बुने हुए कपड़े आप गरीबों में दान भी करते थे।

आप अन्दर से शान्तिस्वरूप परमात्मा की खोज में व्याकुल रहा करते थे। आप ऐसे सन्त सद्गुरु की खोज कर रहे थे, जो आपकी जिज्ञासा और आध्यात्मिक पिपासा को शान्त कर सकें। वैराग्य की उठती तरंगें प्रत्येक सांसारिक बन्धन को अस्वीकार करना चाह रही थीं। आप वैरागी बनकर साधना करने की बात सोच रहे थे, तभी सन् १९४४ ई० में बाबू भगवती प्रसाद सिंह का देहान्त हो गया। उसके बाद आप अपने जन्मस्थान नौतन चले आये। लेकिन फिर उनके परिवार के विशेष आग्रह एवं पिता की आज्ञा से आप पुनः सकरोहर आ गये और उनके कारोबार की देखरेख करने लगे। सन् १९४५ ई० में आपने महेशखूँट स्टेशन पर लोगों की भीड़ देखी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये सत्संगी लोग हैं और सन्तमत-सत्संग के वार्षिक अधिवेशन, पनसलवा से लौट रहे हैं, जहाँ पूज्यपाद सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज पधारे थे। सत्संग-प्रेमियों के मुख से सन्तमत-विषयक चर्चा एवं महर्षिजी का गुणगान सुनकर आपके मन में यह विश्वास बद्धमूल हो गया कि महर्षिजी पहुँचे हुए सन्त हैं। इसी विश्वास ने आपको महर्षिजी के दर्शन करने को प्रेरित किया। यह विश्वास इतना तीव्रतर हुआ कि आपने महर्षिजी का दर्शन कर उनकी शिष्यता ग्रहण करने का पक्का इरादा मन में बना लिया। इस निश्चय के बाद आप ऐसे सुपात्र की तलाश करने लगे, जो आपको महर्षिजी के श्रीचरणों में पहुँचा दे।

चाह को राह मिल ही जाती है। संयोगवश आपकी मुलाकात सत्संगी श्रीजगरूप दासजी से हुई। उनके साथ आप पूज्यपाद रामलगन बाबा सहित परबत्ती (भागलपुर) आश्रम पहुँचे। आश्रम-परिसर में पहुँचते ही आपकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, जब आपने अवतारस्वरूप अलौकिक व्यक्तित्व के दिव्य पुरुष, त्रयताप से सन्तप्त जीवात्मा के उद्धारकर्त्ता महर्षिजी को कुर्सी पर विराजमान देखा। आपने तत्काल उनके पावन युगल चरणों में प्रणिपात किया। उस समय आप अपने भाग्य पर फूले नहीं समा रहे थे। वह क्षण आपके जीवन का सर्वाधिक प्रसन्नता का क्षण था। नाम, पता पूछने के बाद महर्षिजी ने आगमन का उद्देश्य जानना चाहा, तो आपने हठात् कहा कि गुरुमुख होने आया हूँ। महर्षिजी ने कहा– "पहले देख लूँगा कि आप ध्यान-भजन करेंगे, तब दीक्षा दूँगा।" आप उसी दिन से तन-मन से सेवा करते हुए वहीं रहने लगे और जबतक सत्संग होता रहा, सत्संग-वचनों का लाभ उठाते रहे। आपकी सच्ची लगन देखकर २३ फरवरी, १९४६ ई० को महर्षिजी ने आपको मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टियोग की दीक्षा दी। आपके साथ ही पूज्य श्रीरामलगन बाबा भी दीक्षित हुए। आप बड़ी श्रद्धा और पूरी तत्परता से साधन-भजन करने लगे। आपकी पूजा का विस्तृत विधि-विधान देखकर श्रीवैद्यनाथ बाबू (स्व० भगवती बाबू के सुपुत्र) आपको पूज्य भाव से 'साधु बाबा' कहकर पुकारते थे। अपनी साधुता और उदारता का परिचय देते हुए आपने उनसे कभी कुछ पारिश्रमिक के रूप में नहीं लिया। उनसे गरीबों तथा दीन-दुखियों की प्रायः मदद करवाते थे। आपकी परदुःख-कातरता, परोपकारिता और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से उस क्षेत्र के लोग बहुत प्रसन्न थे। लोगों के आग्रह पर कुछ दिनों तक अस्थायी रूप से आपने मुखिया के पद को सुशोभित किया था और बाद में बहुत समय तक सरपंच भी बने रहे।

सन् १९५६ ई० में साधन-भजन करने के लिए आपने निजी रुपयों से पाँच बीघे जमीन खरीदकर एकान्त में फूस की एक कुटिया भी बनवाई। उसी कुटिया में आपका अधिकांश समय साधना में व्यतीत होने लगा और जमीन की आय से उदर-पूर्ति की समस्या भी सुलझ गई। सन्त कबीर साहब की भाँति आप बड़े सन्तोषी व्यक्ति हैं। आपके जीवन का मूलमन्त्र ही है :

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

अपने जीवन में आपने इन आदर्श वाक्यों को चरितार्थ कर लिया है। वस्तुतः एक सच्चे साधु को इससे अधिक चाहिए भी क्या ? एक दिव्य कर्मयोगी की तरह आपने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। बीच-बीच में गुरुदेव के दर्शन और प्रवचन का लाभ भी उठाते रहे। साधना के पथ पर आपकी प्रगति को देखते हुए सन् १९६२ ई० की १८ जनवरी को गुरुदेव ने आपको शब्दयोग की दीक्षा दी। नम्रतापूर्वक पत्र लिखकर आपने गुरुदेव के श्रीचरणों में आग्रह किया था कि यद्यपि मैं शब्दयोग की क्रिया करने के योग्य नहीं हूँ, तथापि जानने की इच्छा है।" गुरुदेव ने प्रसन्नतापूर्वक कहा था,. "आपको शब्दयोग की क्रिया नहीं बताऊँगा, तो किसे बताऊँगा ?" श्रीगुरु महाराज ने शब्दयोग की क्रिया आपको बता दी।

शब्दयोग की साधना करते हुए अनाम पद की ओर आपके बढ़ते कदमों को देख गुरुदेव ने सन् १९६४ ई० की २ फरवरी को स्वेच्छापूर्वक संन्यास-वेश दिया। संन्यासी वेश में आपका नामकरण करते हुए गुरुदेव ने कहा, "आज से इनका नाम

'शाही' रहेगा और 'स्वामी' पदवी रहेगी। कोई-कोई इन्हें 'शाही साहब' भी कहेंगे।" उसी दिन से आप 'शाही स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। गुरुदेव के द्वारा नामकरण की सूचना 'शान्ति-सन्देश' पत्रिका में प्रकाशित कर दी गई। सन् १९६४ ई० में ही गुरुदेव ने आपको दीक्षा देने का अधिकार दे दिया। लेकिन आप यह सोचकर कि 'गुरु आगे जो करे गुरुआई, ताको नरक लिखा है भाई' दीक्षा देना उचित नहीं माना। आज तो कुछ लोग गुरु महाराज की जगह पर अपनी गुरुता कायम करनां चाहते हैं, जो कि एक शिष्य का कर्त्तव्य नहीं हो सकता। सन् १९६७ ई० में गुरुदेव ने आपको इतमादी सत्संग में अपना रजिस्टर देकर भजन-भेद देने का जोरदार आदेश दिया। इसके पहले महर्षिजी ने अपने किसी भी शिष्य को भजन-भेद देने का आदेश-अधिकार नहीं दिया था। गुरुदेव के आदेश को शिरोधार्य करते हुए उसी समय आपने २७ व्यक्तियों को भजन-भेद दिया और तब से आज तक आपने लाखों व्यक्तियों को दीक्षित किया है और गुरु महाराज को ही इष्ट बताया है।

सन्तमत की केन्द्रीय शाखा महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट की व्यवस्था के लिए किसी कार्यकुशल, नीति-निपुण, कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागी, उदार प्रबन्धक की खोज गुरुदेव कर रहे थे। उनकी कृपा-दृष्टि आप पर जा टिकी। आप सन् १९७१ ई० में कुप्पाघाट आश्रम बुला लिये गये और गुरु महाराज की पावन जयन्ती के अवसर पर आपको सर्वसम्मति से व्यवस्थापक के पद पर आसीन किया गया। आपकी आध्यात्मिक अनुभूति, गुरुदेव के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा और भक्ति ने आपको गुरु महाराज के हृदय में स्थान दिला दिया। अन्तर्यामी गुरुदेव आपके हृदय की श्रद्धा और प्रेम को अच्छी तरह जानते थे। गुरुदेव बार-बार कहा करते थे कि "शाही स्वामी मेरे हृदय हैं।" कोई कल्पना करे कि एक सन्त सद्गुरु का हृदय कैसा होगा ? रामचरितमानस में गो० तुलसीदासजी महाराज ने सन्त-हृदय के सम्बन्ध में कहा है कि–

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता॥

आपने गुरुदेव से कई बार प्रार्थना की कि मुझे व्यवस्थापक-पद से मुक्त किया जाय, लेकिन आपके संरक्षण में आश्रम का जितना विकास हुआ, उसका विवरण देना सम्भव नहीं है। गुरुदेव आपकी कार्यकुशलता देखकर हर बार यही कहते–"शाही स्वामीजी ! जबतक मैं शरीर में हूँ, तबतक आप भी व्यवस्थापक बने रहें।" गुरुदेव के आदेश आप पालन करते रहे।

गुरुदेव ने अत्यधिक शारीरिक शिथिलता के कारण सन् १९८३ ई० से सत्संग प्रचार कार्य बन्द कर दिया और कहा कि अब आप ही प्रचार कार्य कीजिये। तभी से सत्संग के प्रचार-प्रसार का सारा दायित्व आपके कन्धों पर आ गया। इसके पूर्व भी सत्संग प्रचार हेतु गुरुदेव आपको ही भेजा करते थे। प्रचार कार्य और व्यवस्थापन साथ-साथ करने के कारण आपकी परेशानी बहुत बढ़ गई थी। लेकिन एक समर्पित शिष्य की तरह गुरु की आज्ञा की अवहेलना कैसे करते ? ८ जून, १९८६ ई०, रविवार को गुरुदेव ने अपने जीवन के एक सौ एक (१०१) वर्ष पूरे किये और ब्रह्मलीन हो गये। इसके बाद अक्टूबर, १९८६ ई० को व्यवस्थापक के पद से आपने त्यागपत्र महासभा को सौंप दिया, लेकिन महासभा ने आपसे सभी विभागों की देख-रेख करने का नम्र निवेदन किया। सच तो यह है कि आपके कार्यकाल में आश्रम की दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होती रही। आपने जिस तरह से आश्रम के व्यवस्थापन का कार्य किया, उसकी अमिट छाप प्रत्येक आश्रमवासी के हृदय पर अंकित है। यदा-कदा आश्रमवासी कहा भी करते हैं कि पूज्य श्रीशाही बाबा जैसे कोई भी व्यवस्थापक नहीं हुए।

गुरुदेव कहा करते थे– 'सत्संग ही मेरी साँस है।' आपने भी गुरुदेव के इस सूत्रवाक्य को हृदयंगम कर लिया है। 'सादा जीवन और उच्च विचार' की आप प्रतिमूर्त्ति हैं। यदि आपको 'Standard of santmat, Standard of character and Standard of morality' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आप भगवान् बुद्ध की तरह धन, पुत्र, स्त्री का मोह त्यागकर संन्यासी जीवन में दृढ़तापूर्वक स्थापित हैं। घर का परित्याग कर देना सरल है, परन्तु स्मरण-प्रवाह और चित्त-प्रवाह से हटा देना सरल नहीं है। आप जहाँ भी रहते हैं, वहाँ प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है। स्वयं गुरुदेव भी आपकी विनोदपूर्ण बातें सुनकर हँस पड़ते थे। आपका स्वरूप हाथरस के सन्त तुलसी साहब के चित्र की याद दिलाता है। सत्साहित्य के क्षेत्र में भी आपका अमूल्य योगदान है। आपके द्वारा रचित पुस्तकें हैं– (१) श्रीशाही स्वामी भजनावली, (२) आपन काज सँवारु रे, (३) सन्तमता बिनु गति नहीं (४) सन्तमत की सार साधना और (५) संसार और परमार्थ। इनके अतिरिक्त आपके प्रवचनों के अंश 'शान्ति-सन्देश' पत्रिका में अनवरत रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। लोगों के हृदय में आपकी साधुता की अमिट छाप है।

श्री सद्गुरु महाराज के पावन चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना है कि आप स्वस्थ एवं दीर्घायु रहकर अध्यात्म के पथिकों का मार्ग-दर्शन करते रहें। ☐

('आपन काज सँवारु रे' पुस्तक से क्षेपक के रूप में प्रस्तुत। –ले०)